

स्वराज आवाज

खंड 2

3 जनवरी 2022



चित्र 1: सावित्री बाई फुले और फातिमा शेख पर विशेष

विषय सूची

1	संपादकीय नोट	2
2	साहस और प्रेरणा की मिसाल हैं सावित्रीबाई फुले की कविताएं: अनिता भारती	2
3	हारता लोकतंत्र: कुमार प्रशांत	6
4	शिक्षा का भारतीयकरण: योगेंद्र यादव	7
5	आजादी के मायने: सुरेंद्र पाल सिंह	9
6	भारत जोड़ो यात्रा में यूथ फॉर स्वराज की भागीदारी: संजीव कुमार और पुष्कर पाल	10
7	कोन थी सावित्री: मानसी भाष्कर	11

1 संपादकीय नोट

आप सभी पाठकों के बीच "स्वराज आवाज़" का दूसरा संस्करण प्रस्तुत करना हमारे लिए गौरव का क्षण है। स्वराज आवाज़ का यह संस्करण हम सावित्री बाई फुले और फातिमा शेख को समर्पित करते हैं।

क्रांतिज्योति सावित्रीबाई फुले, जिनकी जयंती 3 जनवरी को मनाई जाती है, भारत में महिला आंदोलन और दलित आंदोलन की अग्रणी थीं। पितृसत्ता और जातिवाद के खिलाफ उठकर, उन्होंने भारत में लड़कियों की शिक्षा के लिए स्कूल खोला। अनगिनत पीड़ा, अपमान और बहिष्कार सहते हुए उन्होंने अपना संघर्ष जारी रखा। उन्होंने सती प्रथा के खिलाफ काम किया और विधवाओं के लिए घर खोले। सावित्रीबाई ने अपनी कविताओं के माध्यम से जातिवाद, पितृसत्ता, कर्मकांडों और अधविश्वासों पर प्रहार किया। उन्होंने महिलाओं को शिक्षा प्राप्त करने और उत्पीड़न की बेड़ियों को तोड़ने का आह्वान किया। ज्योतिबा के अलावा उनकी सबसे बड़ी सहयोगी फातिमा शेख थीं, जो पहली मुस्लिम महिला शिक्षिका थीं। फातिमा शेख की जयंती 9 जनवरी को मनाई जाती है। जब सावित्रीबाई और ज्योतिबा को उनके घर से निकाल दिया गया, तो फातिमा शेख ने उन्हें आश्रय दिया। फातिमा शेख ने सावित्रीबाई के साथ लड़कियों और दलितों को शिक्षित करने के लिए काम किया।

यह संस्करण में तीन विषयों पर विचार सम्मिलित है - महिला सशक्तिकरण, शिक्षा, और गुजरात, हिमाचल प्रदेश, दिल्ली एमसीडी में हुए हाल के चुनाव। यह तीनों ही समकालीन भारत के महत्वपूर्ण विषय हैं। इन विषयों पर गहरी समझ बनाना और नए सिरे से इन पर बात चीत शुरू करना इस संस्करण का उद्देश्य है।

"स्वराज आवाज़" का संपादकीय दल सभी लेखकों का आभार व्यक्त करता है जिन्होंने अपने अनमोल विचारों को सुंदर शब्दों में पिरोया और हमारे साथ साझा किया। आशा है आप इस पत्रिका को सहप्रेम पढ़ेंगे, नई पहल से जुड़ेंगे और इस श्रृंखला में सहयोग करेंगे।

2 साहस और प्रेरणा की मिसाल हैं सावित्रीबाई फुले की कविताएं: अनिता भारती

यह आश्चर्य की बात है कि सावित्रीबाई फुले, जो उन्नीसवीं शताब्दी में भारत की पहली महिला शिक्षिका और सामाजिक क्रांति की अग्रदूत बनीं, और एक उग्र, निडर, जागरूक, तर्कशील, दार्शनिक, लोकप्रिय नारीवादी कवयित्री थीं, की तरफ हमारी निगाह भी नहीं जाती। या फिर दूसरे शब्दों में कहें तो उनके योगदान पर मौन धारण कर लिया जाता है। सवाल है कि इस मौन धारण का, अवहेलना और उपेक्षा के पीछे कारण क्या हैं? क्या इसका कारण उनका शूद्र तबके में जन्म लेना और स्त्री होना है? सावित्रीबाई फुले का पूरा जीवन समाज के वंचित तबकों, खासकर स्त्री और दलितों, के अधिकारों के लिए संघर्ष और सहयोग में बीता। ज्योतिराव संग सावित्रीबाई फुले ने जब क्रूर पितृसत्ता व ब्राह्मणवाद का विरोध करते हुए लड़कियों के लिए स्कूल खोलने से लेकर तात्कालीन समाज में व्याप्त तमाम दलित-शूद्र-स्त्री विरोधी, सामाजिक, नैतिक और धार्मिक रुढ़ियों-आडंबरों-अधविश्वास के खिलाफ मजबूती से बढ़-चढ़कर डंके की चोट पर जंग लड़ने की ठानी, तब इस जंग में

दुश्मन के खिलाफ लड़ाई का एक मजबूत हथियार बना उनका स्वयं रचित साहित्य, जिसका उन्होंने प्रतिक्रियावादी ताकतों को कड़ा जबाब देने के लिए बहुत खूबसूरती से इस्तेमाल किया। सावित्रीबाई फुले के साहित्य में उनकी कविताएं, पत्र, भाषण, लेख, पुस्तकें आदि शामिल हैं।

सावित्रीबाई फुले ने अपने जीवन काल में दो काव्य पुस्तकों की रचना की। उनकी पहली पुस्तक 'काव्य-फुले' 1854 में तब छपी जब वह मात्र तेईस वर्ष की ही थीं। दूसरी काव्य-संग्रह 'बावनकशी सुबोधरत्नाकर' 1891 में आयी, जिसे सावित्रीबाई फुले ने अपने जीवनसाथी ज्योतिराव फुले की परिनिर्वाण प्राप्ति के बाद उनकी जीवनी रूप में लिखा।

अठारहवीं और उन्नीसवीं शताब्दी में ब्राह्मणवाद अपने कट्टरतम रूप में चरम पर था। उस समय सवर्ण हिन्दू समाज और ब्राह्मणवाद के ठेकेदारों द्वारा शूद्र, दलितों और स्त्रियों पर किए जा रहे अत्याचार-उत्पीड़न-शोषण की कोई सीमा नहीं थी। डॉ अंबेडकर ने अपनी पुस्तक 'एनिहिलेशन ऑफ

कास्ट' (जाति प्रथा का विनाश) में उस समय के हालत का वर्णन करते हुए कहा - "महाराष्ट्र में पेशवाओं के शासनकाल में अछूतों को उस सड़क पर चलने की आज्ञा नहीं थी जिस पर कोई सवर्ण हिन्दू चल रहा हो। उनके लिए आदेश था कि अपनी कलाई में या गले में काला धागा बांधे, ताकि हिन्दू उन्हें भूल से ना छू लें। पेशवाओं की राजधानी पुणे में तो अछूतों के लिए यह आदेश था कि ये कमर में झाड़ू बांधकर चलें, ताकि इनके पैरों के चिह्न झाड़ू से मिट जाएं और कोई हिन्दू इनके पद चिह्नों पर पैर रखकर अपवित्र न हो जाए। अछूत अपने गले में हाँडी बांधकर चले और जब थूकना हो तो उसी में थूके, भूमि पर पड़े अछूत के थूक पर किसी हिन्दू का पैर पड़ जाने से वह अपवित्र हो जाएगा।"

सन 1818 में पेशवाराज के अंत के करीब 13 साल बाद, 3 जनवरी, 1831 को महाराष्ट्र के सतारा जिला के एक छोटे से गांव नायगांव में सावित्रीबाई फुले का जन्म हुआ। सावित्रीबाई मात्र नौ साल की उम्र में ग्यारह साल के ज्योतिराव संग ब्याह दी गई। केवल सत्रह वर्ष की उम्र में ही सावित्रीबाई ने, सवर्ण समाज के द्वारा उत्पन्न अड़चनों से लड़ते हुए, लड़कियों के लिए एक स्कूल की अध्यापिका और प्रधानाचार्या की भूमिका को बड़ी ही लगन, विश्वास और सहजता से निभाया। समता, बंधुता, मैत्री और न्याय पूर्ण समाज की लड़ाई के लिए, सामाजिक क्रांति को आगे बढ़ाने के लिए सावित्रीबाई फुले ने साहित्य की रचना की। आज भी यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि वे एक सजग, तर्कशील, भावप्राण, जुझारू क्रांतिकारी कवयित्री थीं। मात्र 23 साल की उम्र में उनका पहला काव्य संग्रह 'काव्य फुले' आ गया था, जिसमें उन्होंने धर्म, धर्मशास्त्र, धार्मिक पाखंडों और कुरीतियों के खिलाफ जमकर लिखा। सावित्रीबाई ने औरतों की सामाजिक स्थिति पर कविताएं लिखीं और उनकी बुरी स्थिति के लिए जिम्मेदार ब्राह्मणवाद और पितृसत्ता पर कड़ा पर प्रहार किया। सावित्रीबाई फुले अपनी एक कविता में दलितों और बहुजनों को समाज में बैठी अज्ञानता को पहचान कर उसे पकड़ कर कुचल-कुचल कर मारने के लिए कहती हैं, क्योंकि यह अज्ञानता यानी अशिक्षा ही दलित, बहुजन और स्त्री समाज की दुश्मन है, जिसके लिए जानबूझकर सोची-समझी साजिश के तहत वंचित समूह को ज्ञान से दूर रखा गया है।

हमारे जानी दुश्मन का नाम है अज्ञान,
उसे घर दबोचो, मजबूत पकड़ कर पीटो।

इस अशिक्षा रूपी अज्ञानता के कारण ही पूरा बहुजन समाज सवर्ण हिन्दुओं का गुलाम बना है। पाखंड और कूटनीति के हथियार ज्योतिष, पंचांग, हस्तरेखा आदि पर व्यंग्य करती हुई सावित्रीबाई फुले कहती हैं,

ज्योतिष पंचांग हस्तरेखा में पड़े मूर्खों
स्वर्ग नरक की कल्पना में रुचि
पशु जीवन में ऐसे भ्रम की जगह न कोई
मूर्ख मकड़जाल से निकले न ही
हाथ पर हाथ धरे-बैठे मूर्खों निठल्लो को
कैसे इन्सान कहे?

सावित्रीबाई फुले जानती थीं कि शूद्र और दलितों की गरीबी का कारण क्या है। उनके मुताबिक, ब्राह्मणवाद केवल मन की एक मानसिकता ही नहीं वरन एक पूरी व्यवस्था है, जिससे धर्म और ब्राह्मणवाद के पोषक तत्व, देवी-देवता, रीति-रिवाज, पूजा-अर्चना आदि, गरीब-दलित-दमित जनता को अपने में नियंत्रण में रखकर उनकी उन्नति के सारे रास्ते बंद कर उन्हें गरीबी, तंगी, बदहाली भरे जीवन में धकेलते आए हैं।

शूद्र और अतिशूद्र अज्ञान की वजह से पिछड़े देव धर्म,
रीति रिवाज, अर्चना के कारण दरिद्रता अभाव में कंगाल
हुआ।

वह शूद्रों के जाति के आधार पर प्रताड़ना के दुख को दो हजार साल से भी पुराना बताती हैं। इसके कारण के रूप में वह मानती हैं कि इस धरती पर ब्राह्मणों ने अपने आप को स्वयं घोषित देवता बना लिया है, और उसके माध्यम से यह स्वयं घोषित ब्राह्मण देवता अपनी मक्कारी और झूठ फरेब का जाल बिछाकर, उन्हें डरा-धमका कर रात-दिन अपनी सेवा करवाते हैं।

दो हजार साल पुराना
शूद्रों से जुड़ा है एक दुख
ब्राह्मणों की सेवा की आज्ञा देकर
झूठे मक्कार स्वयं घोषित
भू देवताओं ने पछाड़ा है।

सावित्रीबाई फुले कहती हैं कि ब्राह्मणों का ग्रंथ मनुस्मृति को दलित, शूद्र और स्त्री की दुर्दशा की जिम्मेदार है। इसलिए वे मनुस्मृति के रचयिता मनु को इस बात के आड़े हाथ लेती हैं, जिसमें यह कहा गया है कि जो हल चलाता है, जो खेती करता है वह मूर्ख है। दरअसल सावित्रीबाई फुले इस बात में निहित षडयंत्र को जानती हैं। वह जानती हैं कि यदि शूद्र और दलित खेती करेंगे तो संपन्न होंगे। यदि वे संपन्न होंगे तो खुशहाली भरा जीवन व्यतीत करेंगे, जिससे वे ब्राह्मणों की धर्माज्ञा को मानना बंद कर देंगे। इसलिए मनुस्मृति रचयिता को खरी-खरी सुनाते हुए वह कहती हैं,

हल जो चलावे, खेती जी करे
वे मूर्ख होते हैं, कहे मनु
मत करो खेती कहे मनुस्मृति
धर्माज्ञा की करे घोषणा, ब्राह्मणों की

शूद्र और दलित यहां के मूलनिवासी हैं। आक्रांता आर्य बाहर से आए थे और उन्होंने अपनी चलाकी और धूर्तता से, अन्य सत्ताधारी शासकों से मिलकर यहां के भोले-भाले मूलनिवासियों को पद-दलित कर दिया। लेकिन यहाँ के मूलनिवासी शौर्य दयालुता और प्रेम आदि के जीवन मूल्यों में विश्वास रखते आए हैं। इन शूरवीर जननायकों में छत्रपति शिवाजी, महारानी ताराबाई, अंबाबाई आदि शामिल हैं, जिन्होंने समता-मूलक समाज बनाने के लिए अन्याय और अत्याचार के खिलाफ लड़ाई लड़ी। सावित्रीबाई फुले इन शूरवीरों के समक्ष अपना सिर झुकाती हैं।

शूद्र शब्द का सही अर्थ है मूलनिवासी
आक्रांताओं ने शूद्र का ठप्पा लगाया
इराणी भगोड़े से पराजित मूलनिवासी हुए गुलाम
और ब्राह्मण अंग्रेजों के बने दूत
असल में मूलनिवासी शूद्र स्वामी इंडिया के
उन्हें कहा जाता था इंडियन
थे शूर योद्धा पराक्रमी हमारे पुरखे
उन्हीं प्रतापी योद्धाओं के हम सब वंशज

महान शूरवीर योद्धा बलिराजा के प्रति अपना सम्मान प्रकट करते हुए सावित्रीबाई अपने तथा अपने वंचित समाज को उनका वंशज मानती हैं और कहती हैं, शूद्र राजा बलिराजा के राज में समृद्धि है। जनता के पास

काम है। वह मेहनती है, खुश है, सुखी है और खुशहाल है। एक वंचित वर्ग के शासक बलिराज को सिर पर ताज की उपाधि देते हुए सावित्रीबाई फुले कहती हैं,

बलिराज में जनता सुखी
उसकी कीर्ति त्रिभुवन उसकी गौरवगाथा गाते
मूल निवासीजन।
बलिराज में मेहनती प्रजाजन,
दान में पाएं याचक स्वर्ण घन कंचन
सिर पर ताज रत्नों का बलिराज
और जनता के विशाल मन।

छत्रपति शिवाजी बड़े शूरवीर योद्धा और जननायक थे। वंचित तबके की शूद्र-अतिशूद्र जनता उन्हें अपना हमदर्द मानकर सुबह सवेरे रोज याद करती है और उनके शौर्य गान गाती है,

छत्रपति शिवाजी को
सुबह सवेरे याद करते चाहिए
शूद्र अतिशूद्र का हमदर्द

आगे वे इसी कविता में कहती हैं कि राजा नल, द्रौपदी, युधिष्ठिर आदि का गान तो केवल शास्त्र पुराणों तक ही सीमित है, जबकि शिवाजी की शौर्य गाथाएं इतिहास में दर्ज हो गई हैं और हमेशा रहेंगी।

नल राजा, युधिष्ठिर, द्रौपदी आदि
नामी गिरामी शास्त्र-पुराणों के पन्नों तक सीमित
किन्तु छत्रपति शिवाजी की शौर्य गाथा
है इतिहास में दर्ज।

शूद्र-अतिशूद्र और आदिवासी समाज में स्त्रीयां बहुत बहादुर और जुझारू होती हैं। वह किसी भी कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी हार नहीं मानती हैं। मुसीबत आने पर भी किसी भी मोर्चे पर अपने समाज के साथ खड़ी होकर, अपने बच्चों को साथ ले, बराबरी के साथ डटकर मुकाबला करती हैं। महारानी ताराबाई ऐसी ही एक बहादुरी योद्धा थीं। उन्हें लड़ाकू वीरंगना की पदवी देते हुए सावित्रीबाई फुले उन्हें शत्रु मर्दिनी, शेर की तरह दहाड़ने वाली, बिजली से भी अधिक फुर्तीली बताती हैं और अपना प्रेरणास्रोत मानती हैं।

महारानी ताराबाई लड़ाकू वीरंगना
रणभूमि में रण चंडिका तूफानी
युद्ध भूमि में युद्ध की प्रेरणास्रोत
आदर से सिर झुक जाता
उसे प्रणाम करना मुझे सुहाता।

सावित्रीबाई फुले अपनी तमाम उम्र दलित, वंचित, शूद्र व स्त्री तबके के जिस अधिकार के लिए लड़ती रहीं, वह अधिकार था शिक्षा का। इस पूरे वर्ग को जानबूझकर शिक्षा रहित करके उसी ताकत योग्यता और उसके श्रम का शोषण किया गया। उसके वो तमाम रास्ते जो उसे आगे ले जा सकते थे, जो उसे अन्याय के खिलाफ प्रतिकार करने की ताकत देते थे, जो उसे शोषण और अत्याचार से लड़ना सिखाते थे, सब के सब शिक्षा के अधिकार के बिना अधूरे रह गए। इसलिए सावित्रीबाई ने सबसे ज्यादा अपनी कविताओं के माध्यम से शिक्षा प्राप्त करने की अलख जगाई। उन्हें

अपने सामाजिक कार्यों द्वारा अनुभव हो चुका था कि शिक्षा के बिना, खासकर अंग्रेजी शिक्षा के बिना शूद्र-अतिशूद्र तथाकथित मुख्यधारा के विकास में शामिल नहीं हो सकते। अतः वह शूद्र-अतिशूद्रों को अंग्रेजी पढ़ने के लिए प्रोत्साहित करती हैं और अपनी कविता 'अंग्रेजी मैय्या' में कहती हैं,

अंग्रेजी मैय्या। अंग्रेजी मैय्या।
शूद्रों को मुक्ति दिलावे दिलो जान से
अंग्रेजी मैया। अब नहीं है मुगल
नहीं बचा अब पेशवाई, मूर्खशाही।
अंग्रेजी मैया। तूने तोड़ डाली जंजीर पशुता
की इनसानियत की बौघार
सारे शूद्र जनो पर

इसी तरह अपनी दूसरी कविता 'अंग्रेजी पढ़िए' में शूद्रों-अतिशूद्रों को अपनी जीवन शिक्षा से सुधारने के लिए कहती हैं,

विद्या के अभाव में,
बेकार बदतर जीवन
पशुतुल्य हाथ पर हाथ धरे-निठल्ले न बैठे,
करो विद्याग्रहण अंग्रेजी पढ़कर।
जातिभेद की दीवारें तोड़ दीजिए।
फेंक दीजिए भट-ब्राह्मणों के,
षड्यंत्रों से लैस शास्त्रों पंचांगों को।

धार्मिक रुढ़ियों, अंधविश्वास और आडंबर की पोल खोलकर उनका मजाक बनाते हुए, उसपर व्यंग्य करती हुई सावित्रीबाई अपनी 'मन्त' कविता में कहती हैं,

पत्थर को सिंदूर लगाकर
और तेल में डुबोकर
जिसे समझा जाता है देवता
वह असल में होता है पत्थर।

आगे वह इसी कविता में पत्थर से मन्त मांगकर पुत्र प्राप्त करने की अवैज्ञानिकता का मखौल उड़ाते हुए कहती हैं,

यदि पत्थर पूजने से होते पत्थर
तो फिर फिजूल शादी क्यू रचाए नर नारी।

जिस समय सावित्रीबाई का प्रथम कविता संग्रह 'काव्य फुले' आया उस समय वह शूद्र-अतिशूद्र लड़कियों को पढ़ा रही थीं। ज्योतिराव फुले व सावित्रीबाई फुले ने 13 मई, 1848 में पहला स्कूल खोला था और 'काव्य फुले' 1852 में आया। जब वे पहले पहल स्कूल में पढ़ाने के लिए निकलीं तो वह खुद उस समय बच्ची ही थी। उनके कंधे पर ज्यादा से ज्यादा बच्चों को स्कूल तक लाना तथा उन्हें स्कूल में बनाए रखने की भी बात होगी। सावित्रीबाई फुले ने बहुत ही सुंदर बालगीत भी लिखे हैं, जिनमें खेल-खेल में गाते-गाते बच्चों को साफ सुथरा रहना, विद्यालय आकर पढ़ाई करने के लिए प्रेरित करना व पढ़ाई का महत्व बताना आदि शामिल हैं। बच्चों के विद्यालय आने पर वे जिस तरह स्वागत करती हैं, वह उनकी शिक्षा देने की लगन को दर्शाता है,

सुनहरे दिन का उदय हुआ
आओ प्यारे बच्चों आज
हर्ष उल्लास से तुम्हारा स्वागत करती हूँ आज

वह विद्या को श्रेष्ठ धन बताते हुए कहती हैं,

विद्या ही सर्वश्रेष्ठ धन है
सभी धन-दौलत से
जिसके पास है ज्ञान का भंडार
है वो ज्ञानी जनता की नजरों में।

अपने एक अन्य बालगीत में बच्चों को समय का सदुपयोग करने की प्रेरणा देते हुए कहती हैं,

काम जो आज करना है, उसे करें तत्काल
दोपहर में जो कार्य करना है, उसे अभी कर लो
पलभर के बाद का सारा कार्य इसी पल कर लो।
काम पूरा हुआ या नहीं
न पूछे मौत आने से पूर्व कभी।

सावित्रीबाई फुले की एक बालगीत 'समूह' एक लघुनाटिका के समान है। इस कविता में जब वे पाठशाला जाकर पढ़ने वाली पांच शिक्षित समझदार लड़कियों से पाठशाला न जाने वाली अशिक्षित लड़कियों की आपस में बातचीत व तर्क द्वारा उन्हें पाठशाला आकर पढ़ने के लिए कहती हैं, तो निरक्षर लड़कियों जवाब देती हैं,

क्या धरा है पाठशाला में
क्या हमारा सिर फिरा है
फालतू कार्य में वक्त गंवाना बुरा है
चलो खेलें हमारा इसी में भला है

उन्हीं में से कुछ लड़कियों कहती हैं,

रुको जरा माँ से जाकर पूछें चलो सारे
खेल खुद, घर का कार्य या पाठशाला?

लेकिन सभी अशिक्षित लड़कियों जब अपनी-अपनी माँ के पास पहुंचीं और उन्हें पढ़ाई के लिए हुए सारे वाद-विवाद के बारे में बताया, तब उन अशिक्षित लड़कियों की माँ भी इन लड़कियों को शिक्षा का महत्व समझाते हुए कहती हैं,

कदम बढ़ाओ पाठशाला जाओ
इंसानों का सच्चा शिक्षा है
इसे न गवाओ, इसे न ठोकर लगाओ।

सावित्रीबाई फुले जिन स्वतंत्र विचारों की थी, उसकी झलक उनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से मिलती है। वह लड़कियों के घर में काम करने, चौका-बर्तन करने की अपेक्षा उनकी पढ़ाई-लिखाई को बेहद जरूरी मानती थीं। कविताओं की इन पंक्तियों से पता चल जाता है कि सावित्रीबाई फुले स्त्री अधिकार चेतना सम्पन्न स्त्रीवादी कवयित्री थीं।

चौका बर्तन है बहुत जरूरी है पढ़ाई
क्या तुम्हें मेरी बात समझ में आई?

इस लघु नाटिका जैसे गीत के अंत में पांचों लड़कियों को शिक्षा का महत्व समझ में आ जाता है और वे पढ़ने के लिए उत्सुक होते हुए कहती हैं,

चलो चले पाठशाला हमें है पढ़ना
नहीं अब वक्त गंवाना है
ज्ञान विद्या प्राप्त करें, चलो अब संकल्प करें
मूढ़ अज्ञानता, गरीबी गुलामी की जंजीरों को
चलो खत्म करें।

सावित्रीबाई फुले बेहद प्रकृति प्रेमी थीं। 'काव्य फुले' में उनकी कई सारी कविताएं प्रकृति, प्रकृति के उपहार पुष्प और प्रकृति का मनुष्य को दान आदि विषयों पर लिखी गई हैं। तरह-तरह के फूल, तितलियाँ, भँवरे, आदि का जिक्र वे जीवन दर्शन के साथ जोड़कर करती हैं। प्रकृति के अनोखे उपहार – हमारे चारों ओर खेल रहे तरह-तरह के पुष्प – जिनका कवयित्री सावित्रीबाई फुले अपनी कल्पना के सहारे उनकी सुंदरता, मादकता और मोहकता का वर्णन करती हैं, वह सच में बहुत प्रभावित करने वाला है। पीली चम्पा (चाफा) पुष्प के बारे में लिखते हुए वह कहती हैं,

हल्दी रंग की
पीली चम्पा
बाग में खिली, हृदय के भीतर तक बस गई
पता न चला मन में कब घर कर गई

ऐसे ही एक अन्य कविता है 'गुलाब का फूल'। इस कविता में सावित्रीबाई फुले गुलाब और करेन के फूल की तुलना आम आदमी और राजकुमार से करके अपनी कल्पना के जरिए सबको विस्मित कर देती हैं,

गुलाब का फूल और फूल करेन का
रंग रूप दोनों का एक सा
एक आम आदमी, दूसरा राजकुमार
गुलाब की रौनक, देसी फूलों से उसकी उपमा कैसी?

तितली और फूलों की कलियाँ कविता में सावित्रीबाई फुले की दार्शनिक दृष्टि का विस्तार दिखाता है। जिस तरह से समाज के सारे रिश्ते नाते स्वार्थ की दहलीज़ पर खड़े होकर अपना स्वार्थ साधते हैं, इस भाव को अभी तक अन्य कवियों ने अपनी कविताओं में फूल और भँवरे के माध्यम से बताया है। पर सावित्रीबाई फुले ने इस स्वार्थपरकता की भावना को तितली के जरिए स्पष्ट किया।

तितली आकाश में उड़ रही है अपने सुन्दर पंख लिए
तितलियाँ रंग-बिरंगी मन भावन
उनकी आंखें दिलकश सतरंगी, हंसमुख
पंख मुड़े किन्तु भरे उड़ान आकाश में
उनका रंग रूप मनभावन
तितली की मनभावन अदा को देख
एक कली अपने पास बुलाने की भूल कर बैठी
उड़कर पहुंची तितलियाँ फूलों के पास
इकट्ठा कर शहद पी डाला
मुरझा गयी कलियाँ

इसी कविता में आगे लिखा है,

फूलों कलियों का रस चखकर
ढुंढा कहीं और ठिकाना
रीत है यही दुनिया की
जरूरत और पलभर के है रिश्ते-नाते
देख दुनिया की रीत हो जाती चकित।

प्रकृति का सार्वभौमिक सत्य है जीओ और जीने दो। 'इंसान और प्रकृति कविता' में वह इसी तथ्य को प्रतिपादित करते हुए कहती हैं,

मानव जीवन को करे समृद्ध
भय चिंता सभी को छोड़ आईए
खुद जिए और प्रकृति
दोनों है एक ही सिक्के के पहलू।

सावित्रीबाई फुले अपने दाम्पत्य जीवन में, अपनी आजादी में, अपने आनंद में और अपने सामाजिक काम में, ज्योतिराव फुले के प्यार, स्नेह और सहयोग को हमेशा दिल में जगाए रखती थीं। पचास साल के अपने दाम्पत्य जीवन में वे ज्योतिबा के साथ हर पल, हर समय उनके साथ कदम से कदम मिलाकर चलती रहीं, तथा ज्योतिराव को अपने मन के भीतर संजोकर रखा। ज्योतिराव और सावित्रीबाई फुले जैसा प्यार, आपसी समझदारी सामाजिक कार्यकर्ताओं के लिए प्रेरणा और समाज के लिए मिसाल है। सामाजिक काम की प्रेरणा के साथ वे अपने काव्य सृजन की प्रेरणा भी ज्योतिराव फुले को ही मानती। वह लिखती हैं,

ऐसा बोध प्राप्त होता है
ज्योतिबा के सम्पर्क में
मन के भीतर सहेजकर रखती हूं
में सावित्री ज्योतिबा की।

संसार का रास्ता कविता में संसार के रास्ते से अलग चलते हुए वह कहती हैं,

मेरे जीवन में ज्योतिबा स्वानंद समग्र आनंद
जिस तरह होता है शहद
फूलों कलियों में।
ज्योतिबा को सलाम
हृदय से करते
ज्ञान का अमृत हमें वे देते,
हम पुनर्जीवित जैसे होते हैं महान ज्योतिबा,
दीन-दलित, शूद्र-अतिशूद्र तुम्हें पुकारते हैं

'ज्योतिराव-सावित्री संवाद' कविता में सावित्रीबाई फुले ने अपने और ज्योतिराव फुले के बीच के प्रातःकालीन भ्रमण के समय सुबह की प्राकृतिक सुषमा का वर्णन किया है। सावित्रीबाई फुले की इस कविता में सुबह की प्राकृतिक सुषमा के मनोहारी दृश्य के वर्णन के बीच सामाजिक मुद्दों पर बहस छिड़ जाती है। इसे बेहद खूबसूरती से चित्रमय संवाद के रूप में दिखाया है। ज्योतिराव सावित्रीबाई से सुबह होने पर रात के दुखी होने की बात करते हैं। इस बात का सावित्रीबाई फुले जवाब देते हुए कहती हैं कि क्या रात यदि यह इच्छा करती है, कि प्रकृति सूर्य बिन रहे, तो उसकी इच्छा उल्लू के सामान है, जो सूरज को गाली-गलौज और श्राप देने की कामना करती है।

बातें ज्योतिबा की सुन कहे सावित्री
करे इच्छा रात-रजनी
रहे प्रकृति सूरज बिन
रहें अंधियारे में हमेशा-हमेशा
उल्लुओं की इच्छा होती है ऐसी
करे सूरज को, गाली गलौज और दे श्राप

सावित्री का तर्क सम्मत जवाब सुन ज्योतिराव कहते हैं, कि तुम ठीक कहती हो सावित्री, शिक्षा के कारण अंधकार छंट गया है और शूद्र-महार जाग गये हैं। उल्लुओं की हमेशा इच्छा होती है कि शूद्र और महार दीन-दलित अज्ञानियों की तरह जीवन जिए। मुर्गा को टोकरी से ढकने पर भी वह बांग देना नहीं छोड़ते। अतः कोई कितना कोशिश करे एक दिन शूद्र-महार जनता अपना शिक्षा का अधिकार पाकर ही रहेगी,

सच कही हो तुम, छटा अंधकार
शूद्रादि महार जाग गये
दीन दलित अज्ञानी रहकर दुख सहे
पशु भांति जिए यह उल्लुओं की है इच्छा
मुर्गा टोकरी से ढका रखने पर भी
देता है बांग
और जनता को बताने, सुबह होने की बात

कविता के अन्त में सावित्री घोषणा करती हैं

शूद्र जनता के क्षितिज, ज्योतिबा सूरज
तेज से युक्त, अपूर्व, उदय हुआ।

3 हारता लोकतंत्र: कुमार प्रशांत

लोकतांत्रिक प्रसव वेदना से गुजर रहे दिल्ली, हिमाचल प्रदेश व गुजरात के गर्भ से चुनाव-परिणाम का जन्म हो चुका है। अब सारे सर्जन, डॉक्टर, नीम हकीम अपने आरामगाहों में लौट चुके हैं। जिन चैनलों की नाल कब की कट चुकी है, वे सब चुनाव परिणामों के विश्लेषण के नाम पर आपसी छीछालेवर में लगे हैं। यह छपने या सुनने वाले मीडिया के सबसे बदरूप चेहरे को बर्दाश्त करने का, सबसे शर्मनाक दौर है।

हर चुनाव में कोई दल जीतता है, कोई हारता है। इस चुनाव में भी यही हुआ है। लेकिन पार्टियां ऐसे दिखा रही हैं कि हारा तो दूसरा है, हमारे

हिस्से तो जीत-ही-जीत आई हैं। आम आदमी पार्टी इसी का राग अलाप रही हैं कि इस चुनाव ने उसे राष्ट्रीय दल बना दिया है; कांग्रेस अपनी नहीं, दूसरों की हार का विश्लेषण करने में निपुणता दिखा रही है; भाजपा के प्रधान भोंपू ने इशारा कर दिया तो सारे भाजपाई एक ही झुनझुना बजा रहे हैं, कि हमने सारे रिकार्ड तोड़ डाले। सबकी एक बात सही है कि सभी अपना झूठ छिपा रहे हैं।

चुनाव परिणाम का कोई नाता अगर उस लोकतंत्र से भी होता हो कि जिसके कारण चुनावी राजनीति व संसदीय लोकतंत्र का अस्तित्व बना

हुआ है, तो हमें यह खूब समझना चाहिए कि दल जीत रहे हैं, "हम भारत के लोग" और हमारा लोकतंत्र लगातार हारता जा रहा है। संविधान अब एक पुराने जिल्द की रामायण भर बची है जिसका राम कूच कर गया है। कौन-क्या जीता इसकी इतनी वाचाल चर्चा की जा रही है ताकि किसी को याद करने की फुरसत न रहे कि हम कहां, क्या हार रहे हैं। हम चुनावों की संवैधानिक पवित्रता व उसका राजनीतिक अस्तित्व हार रहे हैं; हम चुनाव आयोग हार रहे हैं; हम चुनावों की आचार संहिता हार रहे हैं; हम बुनियादी लोकतांत्रिक नैतिकता हार रहे हैं। हम हर वह नैतिक प्रतिमान हार रहे हैं जिसके आधार पर हमारा संविधान बना है; हम हर वह लोकतांत्रिक मर्यादा हार रहे हैं, जिसके बिना लोकतंत्र भीड़बाजी मात्र बन कर रह जाएगा। हर चुनाव में जातीयता जीत रही है, धार्मिक उन्माद जीत रहा है, धन-बल व सत्ता-बल जीत रहा है; झूठ व मक्कारी जीत रही है। यह तस्वीर को काली करने जैसी बात नहीं है; तस्वीर को ठीक से देखने-समझने की बात है।

गुजरात हम सबके लिए गहरे सबब का विषय होना चाहिए। इसलिए नहीं कि वह एक ही पार्टी को लगातार से चुन रहा है, बल्कि इसलिए कि वह गहरे कारणों से लगातार अविवेकी फैसला कर रहा है और देश की तमाम लोकतांत्रिक ताकतें मिल कर भी उसे इस मूर्ख से बाहर नहीं ला पा रही है। गुजरात उस हाल में पहुंचा दिया गया है, जिस हाल में यूरोप में कभी जर्मनी पहुंचा दिया गया था। जब जहर नसों में उतार दिया जाता है तब ऐसी अंधता जन्म लेती है। दुनिया ने और हमने ऐसी अंधता पहले भी देखी है, बल्कि कहूँ तो हमारी आजादी अंधता के ऐसे ही दौर में लिथड़ी हम तक पहुंची थी। गांधी ने ऐसे ही नहीं कहा था कि ऐसी आजादी में उनकी सांस घुटती है; और हम जानते हैं कि अंततः उनकी सांस टूट ही गई।

गुजरात में देश के गृहमंत्री कहते हैं कि 2002 में हमने यहां जो सबक सिखाया, उसका परिणाम है कि यहां आज तक शांति बनी हुई है। वे देश को खुलेआम धमकी दे रहे हैं, कि सांप्रदायिक नरसंहार का रास्ता हम जानते हैं, यह भूलना मत। यह शर्मनाक है, लोकतंत्र के खात्मे का एलान है, संविधान की आत्मा की हत्या है। वे सैकड़ों सभाओं-रैलियों व रोड-शो में यह सब कहते रहे लेकिन न चुनाव आयोग ने कुछ कहा, न न्यायालय ने। संविधान ने अपने इतने हाथ-पांव इसलिए ही तो बनाए

थे कि एक विकलांग होने लगे तो दूसरा उसकी जगह ले ले; एक गूंगा होने लगे तो दूसरा बोले। यहां तो सभी विकलांग, गूंगे और बहरे बनते जा रहे हैं।

गुजरात का सामूहिक नैतिक पतन हुआ है। यह सारे देश में हो रहा है। दिल्ली नगरपालिका के चुनाव में खेल का मैदान ही बदल दिया गया; गुजरात में चुनाव आयोग ने अपना अनुशासन ही ताक पर रख दिया। झूठ, मक्कारी, सरकारी संसाधनों व धन-बाहुबल से चुनाव जीतने का प्रपंच किसे नहीं दिखा? लोकतंत्र और चुनाव-तंत्र में फर्क है। तभी तो संवैधानिक व्यवस्था ऐसी बनाई गई कि चुनाव को 5 साल में एक बार आना है, लोकतंत्र को रोज-रोज अपने चरित्र में उतारना है। मन लोकतांत्रिक बने तो व्यवहार अपने आप लोकतंत्र अपनाते लगता है। चुनाव लोकतंत्र की आत्मा नहीं, उसका एक अंशमात्र है। यहां तो चुनाव को ही लोकतंत्र बना दिया गया है, जिसमें अपने प्रधान को आगे रख कर सारी पैदल सेना उतारी जाती है; और वह पुरानी मान्यता शब्दशः अमल में लाई जाती है कि प्यार व युद्ध में सब कुछ जायज है। यह लोकोक्ति ही लोकतांत्रिक नहीं है।

संसदीय लोकतंत्र एक चीज है, संवैधानिक लोकतंत्र एकदम भिन्न चीज है। एक बांचा है, दूसरी आत्मा है। आत्मा मार कर, बांचा जीत लिया है हमने; और मरे हुए लोकतंत्र को बड़े धूमधाम से ढो रहे हैं। तभी तो हर असहमति को डॉट कर कहते हैं: "वोट हमें मिला है"। भीड़ की स्वीकृति लोकतंत्र की अंतिम कसौटी नहीं होती है। हम कैसे भूल सकते हैं कि हमारी गुलामी को भी भीड़ की स्वीकृति थी। आजादी की लड़ाई लड़ने वाले तब भी अल्पमत में थे। इसलिए लोकतंत्र की दिशा भीड़ को शिक्षित, जाग्रत जनमत में बदलने की होती है। हम सोचें कि हमारी आजादी की लड़ाई के गर्भ से अगर लोकतंत्र का जन्म नहीं हुआ होता तो चुनाव का यह सारा तामझाम भी नहीं होता न? तो बुनियाद कहां कि अंतिम कसौटी कहां, लोकतंत्र ही है कि जिसका संरक्षण-संवर्धन करना है। वह बना रहा, स्वस्थ व गतिशील रहा तो बाकी सारा कुछ रास्ते पर आ जाएगा।

इसलिए कह रहा हूँ कि इन चुनावों में पार्टियां जीती हैं, हम "भारत के लोग" व हमारा लोकतंत्र हारा है। यह हार हमें बहुत महंगी पड़ेगी।

4 शिक्षा का भारतीयकरण: योगेंद्र यादव

शिक्षा का भारतीयकरण हो कि नहीं – सवाल यह नहीं है। असल सवाल ये है कि शिक्षा का भारतीयकरण कैसे हो और ऐसा लगता नहीं कि यह असल सवाल फिलहाल कोई पूछ रहा है। क्या हम ये चाहते हैं कि जो शिक्षा मुख्यतः औपनिवेशिक तर्ज पर बनी है, उसपर हिन्दुस्तानीपन का तड़का मारकर काम चलाएं? या, हम हिम्मत दिखाते हुए अचार और मुरब्बे वाला तरीका अपनायें, शिक्षा के रूप और अंतर्वस्तु को, चाहे वह देसी हो या विदेशी – कुछ इस तरह गलायें कि वह भारतीय संदर्भों के अनुकूल लगे, उससे भारतीय जरूरतों को संतुष्ट करनेवाला स्वाद आए और ऐसा जान पड़े मानो हमारे देश की शिक्षा हमारी ज्ञान-परंपराओं का ही विकसित और परिष्कृत हिस्सा है?

पिछले वर्ष हरिद्वार के देव संस्कृति विश्वविद्यालय में दक्षिण एशियाई शांति एवं सुलह संस्थान (साउथ एशियन इंस्टीट्यूट आफ पीस एंड रि-कंसीलेशन) का उद्घाटन करते हुए पूर्व उप-राष्ट्रपति वेंकैया नायडू ने शिक्षा के 'भारतीयकरण' के पक्ष में तर्क देते हुए थॉमस बैबिंग्टन मैकाले की बनायी लीक से उबरने का आह्वान किया और कहा कि हमें अपनी 'जड़ों की ओर लौटना' होगा, अपनी 'संस्कृति और विरासत की महानता'

को समझना होगा, अपनी 'हीनताबोध की ग्रंथि' से उबरना होगा और मातृभाषाओं को अपनाना होगा। उन्होंने कहा कि हो सकता है कि इसे भगवाकरण का लकब दे दिया जाए लेकिन भगवा में गलत क्या है? जाहिर है, फिर समाचारों में सुखियां यही बननी थीं कि उप-राष्ट्रपति ने शिक्षा के भगवाकरण की बात कही और उप-राष्ट्रपति के उद्घोषण में जो मुख्य बात थी यानी 'शिक्षा का भारतीयकरण' वह समाचारों की सुखियों से गायब हो गयी।

4.1 भैंस के आगे बिन बजाना

उप-राष्ट्रपति ने जो बात उठायी उसकी अहमियत दो घटनाओं से भी जाहिर होती है। गुजरात सरकार ने ऐलान किया है कि भगवदगीता के उपदेशों को स्कूली पाठ्यक्रम का हिस्सा बनाया जाएगा। छात्रों को गीता के श्लोक रटना सिखाया जाएगा, साथ ही उन्हें गीता की कुछ प्रचलित व्याख्याएं भी पढ़नी होंगी। गुजरात सरकार की इस घोषणा में यह बात कहीं नहीं कही गयी कि दूसरे धर्मों के ग्रंथ या महाकाव्य पाठ्यक्रम में शामिल किये जा सकते हैं या नहीं। हाल ही में, राज्यसभा में भारतीय

जनता पार्टी के विचारक राकेश सिन्हा के निजी प्रस्ताव पर बहस हुई। इस प्रस्ताव में कहा गया था कि भारत की प्राचीन ज्ञान-परंपरा के पुनरुद्धार के लिए राज्य और जिला स्तर पर शोध-संस्थान बनाये जाने चाहिए। राकेश सिन्हा ने बहस के दौरान यह भी कहा कि भारतीय अगर अपनी ज्ञान-परंपरा से बिछुड़ गये हैं तो इसका जिम्मेदार मैकाले है।

इन घटनाओं को लेकर कोई खास प्रतिक्रिया देखने को नहीं मिली, सार्वजनिक तौर पर तो कोई खास हो-हल्ला नहीं ही हुआ।

लेकिन जो थोड़ी-बहुत प्रतिक्रियाएं सामने आयीं वो पुरानी लीक पर ही थीं। भगवद्गीता को स्कूली पाठ्यक्रम में शामिल करने के गुजरात सरकार के फैसले को लेकर तुरंत प्रतिक्रिया के तौर पर कहा गया (और एक हद तक ठीक ही कहा गया) कि इससे संविधान के अनुच्छेद 28(1) और 28(3) में प्रदत्त अधिकारों का उल्लंघन होता है। भारतीयकरण और भगवाकरण को पर्यायवाची के तौर पर इस्तेमाल करने की जुगत की भी आलोचना की गयी। और, जहां तक भारत की प्राचीन ज्ञान-परंपराओं के पुनरुद्धार और उन्हें अपनाने की बात है तो इसपर यह कहते हुए अंगुली उठायी गयी कि यह तो सिर्फ एक जाति यानी ब्राह्मणों की ज्ञान-परंपराओं को बढ़ावा देने की बात है।

शिक्षा के भारतीयकरण के मसले पर बहसें इसी रीति से शुरू और खत्म होती हैं। कोई अपना अधकचरा प्रस्ताव लिये चला आता है और पेश कर देता है, लेकिन प्रस्ताव कुछ यों निकलता है कि आपको ऊंची दुकान, फीके पकवान वाली मसल याद आ जाए।

प्रस्ताव की दबी जुबान से सराहना होती है या फिर उसका उपहास किया जाता है। जब-तब पाठ्यक्रम में कुछ सजावटी-दिखावटी किस्म के बदलाव कर दिये जाते हैं। बदलाव का यह करतब मसले के पक्ष और विपक्ष में खड़े विचारकों-पैरोकारों में जोश भरता है, लेकिन इस पूरे क्रियाकलाप में जो चीज सिर से नजर नहीं आती वह ये कि सीखने-सिखाने, पढ़ने-पढ़ाने के प्रचलित ढर्रे पर कुछ असर हुआ या नहीं। कभी मैंने इसी बात को लक्ष्य करके लिखा था कि यह तो भैंस के आगे बीन बजाना हुआ।

4.2 भारतीयकरण का 'तड़का-मार' तरीका

शिक्षा के भारतीयकरण का एक तरीका बड़ा प्रचलित हो चला है और जब-तब इस तरीके की पैरोकारी राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ और उससे जुड़े परिवारीय संगठन करते हैं। असल दिक्कत शिक्षा के भारतीयकरण के इस प्रचलित तरीके के साथ ही है। आप चाहें तो यहां सुभीते के लिए इस प्रचलित तरीके को शिक्षा के भारतीयकरण का तड़का-मार तरीका कह सकते हैं। इस तरीके में करना कुछ खास नहीं होता – औपनिवेशिक तर्ज की जो शिक्षा पहले से चली आ ही है उसे जस-का-तस बनाये रखना होता है, लेकिन शिक्षा की इस बासी कढ़ी में उबाल लाने के लिए आखिर को इसमें तड़का लगाने की जुगत करनी होती है, ताकि परोसा जाए तो भारतीय किस्म की खुशबू और स्वाद आए। नीति-निर्माण के दस्तावेज तैयार करते वक्त इस तड़का-मार तरीके के तहत प्राचीन ज्ञान-परंपरा का कोई अस्पष्ट सा हवाला दिया जाता है, प्रसंग ना भी हो तो भी दस्तावेज में गुरु-शिष्य परंपरा की जहां-तहां दुहाइयां दी जाती हैं, और फिर पूरी गर्व-गर्जना के साथ भारत के विश्व-गुरु होने की घोषणा की जाती है। राष्ट्रीय शिक्षा नीति-2020 में मुख्यतः इसी तरीके का पालन किया गया है। शिक्षा के भारतीयकरण के इस तड़का-मार तरीके के तहत पाठ्यक्रम तैयार करना हो तो उसमें नैतिक शिक्षा के नाम पर अक्सर-ओ-बेशतर किसी हिन्दू धर्मग्रंथ को घुसाने की कवायद की जाती है। अन्य धर्म या सांस्कृतिक परंपराओं को तजकर पाठ्यक्रम बनाने की इस लीला के कारण सेकुलरिज्म बनाम धार्मिक अधिकार की बहस उठ

खड़ी होती है। गुजरात सरकार ने शायद यही करना चाहा है।

यह कोई संयोग नहीं है कि भगवद्गीता को पाठ्यक्रम में शामिल करने के प्रस्ताव की घोषणा इस निर्णय के साथ हुई कि, गुजरात के सभी सरकारी स्कूलों में अंग्रेजी पहली कक्षा से ही अनिवार्य विषय के रूप में पढ़ायी जाएगी और छठी कक्षा तथा उससे आगे की स्कूली पढ़ाई में गणित और विज्ञान की शिक्षा अंग्रेजी भाषा को माध्यम मानकर दी जाएगी। अब आप सोचते रहिए कि क्या सूबे गुजरात के स्कूली पाठ्यक्रम में गीता का तड़का लगाने का फैसला इस नाते किया गया कि अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने के फैसले पर कोई अंगुली ना उठाए, उसपर कोई बहस ना खड़ी हो जाए। यहां हम मिसाल के तौर पर दिल्ली सरकार के देशभक्ति पाठ्यक्रम को भी ले सकते हैं। यह पूरा पाठ्यक्रम इस चिन्ता को अपने आसपास फटकने ही नहीं देता कि किसी चीज का नाम शिक्षाशास्त्र (पेडागॉजी) भी होता है और पढ़ाई-लिखाई के मसलों को शिक्षा-शास्त्रीय चिन्ताओं के दायरे में लाकर भी सोचना होता है – ऐसे में प्रचारबाजी के बाकी कारनामों की तरह दिल्ली सरकार का देशभक्ति का पाठ्यक्रम भी एक मजाक बनकर रह गया है।

इस तड़का-मार तरीके के प्रचलन में आने के कारण शिक्षा के भारतीयकरण को लेकर कोई भी चर्चा नितान्त सतही किस्म की बनकर रह जाती है और वैमनस्य उसमें पूरमपुर भरा होता है। जाहिर है, फिर भारतीयकरण के इस तड़का-मार तरीके को पूरी तरह स्वारिज भी किया जाता है। वैज्ञानिक कह उठते हैं कि प्राचीन काल में भारत में कास्मेटिक सर्जरी या फिर ज्योतिर्विद्या (एस्ट्रोफिजिक्स) के होने संबंधी दावे सीधे-सीधे झांसापट्टी हैं और ज्यादा से ज्यादा उन्हें मसखरेपन का नमूना माना जा सकता है।

प्राचीन भारत, पुराण-कथाओं और धर्मग्रंथों के इतिहासकार इस तरह के भौंडे नकलचीपन के आगे ब्राह्मिन् कर रहे हैं। शिक्षाविद नानाविध की ऐसी नौटंकियों से अलग हैरान-पेशान हैं। सेकुलरवाद के पैरोकार एक्टिविस्ट प्रतिरोध की आवाज में बोलते हैं कि पूरी की पूरी आबादी पर जबर्दस्ती हिन्दू धर्मग्रंथ थोपे जा रहे हैं। सामाजिक न्याय के पैरोकार हलकान हैं कि ब्राह्मणवादी ग्रंथों की रसाई और पोसाई हो रही है जबकि बाकी ज्ञान-परंपराओं को एक सिरे से मिटाने के उपक्रम हो रहे हैं। दूसरी तरफ शिक्षा-क्षेत्र के उद्यमी हैं जो अपने को शिक्षा के भारतीयकरण के इस तड़का-मार तरीके के अनुकूल बना रहे हैं और इस क्रम में पश्चिमी शिक्षा पद्धति के बिजूके को पूरे तामझाम से बनाये रखते हुए उसपर भारतीय ज्ञान-परंपरा के कुछ बेल-बूटे काढ़ने के करतब में लगे हुए हैं।

अगर सीखने-सिखाने यानी शिक्षाशास्त्रीय सरोकारों से सोचें तो जान पड़ेगा कि शिक्षा के भारतीयकरण का यह पूरा करतब आत्मघात के विराट उपक्रम में बदल गया है, एक सांस्कृतिक त्रासदी और राष्ट्रीय शर्म का विषय बनकर हमारे आगे नमूदार हुआ है।

हम सबको गांधीजी का यह कहा तो बार-बार याद आता है: "मैं चाहता हूँ कि हर भूमि की संस्कृति मेरे घर में जहां तक संभव है बेरोकटोक आए लेकिन मैं कतई बर्दाश्त नहीं करूंगा कि इनमें से किसी के आगे मेरे पैर मेरी जमीन से उखड़ जाएं।" लेकिन इसके तुरंत बाद जो महात्मा गांधी ने कहा था, उसे हम शायद ही याद करते हैं। गांधीजी ने ऊपर के उद्धरण के आगे के वाक्य में यह भी कहा कि: "मुझे दूसरों के घर में घुसपैठिया, भिखारी या गुलाम बनकर रहने से इनकार है।" आज के भारत में आधुनिक शिक्षा के नाम पर जो कुछ हो रहा है, उसपर गांधी की यह उक्ति एकदम ठीक बैठती है। यह शिक्षा हमें पश्चिमी ज्ञान के मकान में घुसपैठिया, भिखारी और गुलाम बनकर रहने की सीख देती है।

4.3 अचार और मुरब्बा वाला तरीका

आज बड़ी जरूरत है कि हम शिक्षा के भारतीयकरण के एक नये तरीके के बारे में सोचें। अब इस लेख में ऊपर रसोईघर के मुहावरे में बातें लिखी गयी हैं तो उसी को आगे बढ़ाते हुए यहां कहें कि शिक्षा के भारतीयकरण का एक वैकल्पिक तरीका वह हो सकता है जिसे हम मुरब्बा बनाते वक्त अपनाते हैं। व्यंजन के तैयार हो जाने के बाद उसमें एक बार तड़का मार देने की जिस विधि की ऊपर चर्चा की गयी है, मुरब्बा बनाने की यह विधि उससे निहायत अलग है। इसमें सिरके के सहारे व्यंजन बनाने की मूल सामग्री को कुछ देर तक मुलायम बनाना होता है, कुछ ऐसे कि उसमें बाकी रस और मसाले बड़ी आसानी से घुल मिल जाएं और व्यंजन बनाने की मूल सामग्री नयी सूत-सीरत अख्तियार कर ले। कुछ ऐसा ही हमें शिक्षा में भी करने की जरूरत है।

शिक्षा की मूल सामग्री हम कहीं की भी रख सकते हैं – वह पश्चिम की हो, भारत या फिर दुनिया के बाकी हिस्सों की। भारतीयकरण का मतलब यह नहीं कि हम भारत की राष्ट्रीय सीमाओं के दायरे में पायी जानेवाली ज्ञान-सामग्री तक ही सीमित रहें। मूल सामग्री हम हर जगह की ले सकते हैं लेकिन उसे भारतीय परिवेश और संदर्भों के अनुकूल बनाना होगा, हमारे देश की जो मौजूदा जरूरतें हैं, उस हिसाब से उन्हें ढालना होगा – इस सामग्री को ऐसा बनाना होगा कि उसमें हमारी ज्ञान-परंपराओं की रसाई हो सके। यह प्रक्रिया धीमी होगी लेकिन फिर उतनी ही गहरी और पायेदार भी।

भारतीयकरण के इस वैकल्पिक तरीके में खासतौर से कुछ नीतिगत उपाय करने होंगे। जैसे, पहला तो यही कि हमें भरपूर साहस दिखाना होगा और जो एक किस्म का भाषाई रंगभेद प्रचलित है, उसपर सवाल उठाने होंगे – अंग्रेजी माध्यम से शिक्षा देने की जो शिक्षाशास्त्रीय बर्बरता हम दिखा रहे हैं, उससे बाज आना होगा। इसकी जगह हमें वह करना होगा जो तमाम शिक्षाविद, भाषाविद और संज्ञानात्मक मनोविज्ञान के तमाम विशेषज्ञ कब से बताते आ रहे हैं, यानी बच्चों को उनकी मातृ-भाषा में शिक्षा देनी होगी, साथ ही उनके लिए एक बहुभाषिक दुनिया के दर्शन के दरवाजे खोल रखने होंगे, यह याद रखते हुए कि इस बहुभाषिक दुनिया का एक झरोखा अंग्रेजी भी है।

दूसरी बात है “करते की विद्या” वाला तरीका अपनाना यानी हाथ से

किसी काम को करके दिखाइए और इस क्रम में सीखते जाइए। अगर हम ब्राह्मणवादी शिक्षा पद्धति से उबरना चाहते हैं, तो फिर हस्तकर्म और हस्तशिल्प की गरिमा की बहाली हमारी पाठ्यचर्या का अनिवार्य हिस्सा होना चाहिए।

तीसरी बात, सीखना-सिखाना चाहे किसी भी विषय में हो (और यह बात प्राकृतिक विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की शिक्षा को शामिल करते हुए कही जा रही है), उसे भारतीय संदर्भों के अनुकूल बनाया जाए। तमाम विषयों की बनावट-बुनावट ऐसी है कि उसके हर रेशे और गांठ पर पश्चिमी संदर्भ चिपके हुए हैं, भले वे सीधे-सीधे नजर ना आएं। अब ऐसी शिक्षा के ऊपर भारतीय संदर्भों की छोटी सी चिन्दी या बिन्दी लगाने से बात नहीं बननेवाली। तैयार रहना होगा कि हम अपने परिवेश और संदर्भों के सवाल उठाएँ तो पढ़ाई-लिखाई के हमारे अकादमिक विषयों से उन सवालों के उत्तर मिलें।

चौथी बात यह कि बेशक हमारे छात्र दुनिया भर की ज्ञान-राशि से लाभान्वित हों लेकिन उन्हें हमारी अपनी बौद्धिक विरासत, अपने महाकाव्यों और अपनी भूमि में प्रचलन में रहे व्यावहारिक ज्ञान से अनजान नहीं होना चाहिए। इसका एक मतलब हुआ कि जीवन के बहुविध क्षेत्रों जैसे कृषि, वस्त्र-निर्माण, वास्तुशिल्प तथा चिकित्सा आदि के क्षेत्र में जो ज्ञान पहले से मौजूद चला आ रहा है, उन्हें पहचानना और उनका पुनर्वास करना।

और, इस सिलसिले की आखिर की बात यह कि अगर हम शिक्षा के भारतीयकरण का कोई गंभीर उपक्रम करने जा रहे हैं तो फिर हमें अपनी नयी पीढ़ियों को भारतीय संविधान के मान-मूल्यों के बारे में सिखाना होगा। ये मान-मूल्य भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में बनी विचारधाराई सहमति की उपज हैं।

विष्णुपुराण में एक जगह शिक्षा की संभवतया सबसे अच्छी परिभाषा दी गयी है कि “सा विद्या या विमुक्तये”। जो लोग शिक्षा के भारतीयकरण की पैरोकारी कर रहे हैं उनसे हम विष्णुपुराण की इस उक्ति के सहारे असल सवाल पूछ सकते हैं। असल सवाल यह कि: क्या शिक्षा का भारतीयकरण कोई हथियार है जिसके दम पर हमें अज्ञानता, हीनता-बोध या फिर कूपमंडूकता की काल-कोठरी में बंद कर दिया जाए? या फिर, हम ये चाहते हैं कि भारतीयकरण हमें बिना घुसपैठिया, मिखारी या गुलाम बने सदा सीखने को मुक्त करे?

5 आजादी के मायने: सुरेंद्र पाल सिंह

“आजादी के मायने” से क्या तात्पर्य है? जहां देश “आजादी का अमृत महोत्सव” बड़े धूम-धाम से मना रहा है, तब यह विषय और भी प्रासंगिक हो जाता है। जब हम आजादी की बात करते हैं तो आजादी के विचार की उत्पत्ति और उसकी निरंतरता पर भी नजर डालना आवश्यक हो जाता है। इसके लिए हमें इतिहास में झांकने की आवश्यकता है। यदि हम अपने देश की आजादी की लड़ाई के इतिहास पर नजर डालें तो उपनिवेशवाद के खिलाफ जो पहला विद्रोह हुआ था – जिसे गदर भी कहा जाता है, जन विद्रोह भी कहा जाता है, और बगावत भी कहा जाता है – वह था सन 1857 की क्रांति। तमाम बागियों ने दिल्ली की तरफ कूच किया और उन्होंने आखिरी मुगल बादशाह बहादुर शाह ज़फर को अपना नेता चुना। बहादुर शाह ज़फर बयासी साल के थे और उनका शासन भी मिला-जुला कर दिल्ली शहर से बाहर तक नहीं था। क्या वजह है कि हमने एक उम्रयाफ़ता और शक्तिहीन व्यक्ति को एक बड़ी जनक्रांति के नेतृत्व के लिए चुना?

इसके बाद सन 1885 में कांग्रेस की स्थापना हुई। पहले विश्वयुद्ध के

दौरान गदर पार्टी ने एक बड़ी बगावत का असफल प्रयास किया, बाद में गांधी जी के नेतृत्व में असहयोग आंदोलन, सविनय अवज्ञा आंदोलन, भारत छोड़ो आंदोलन हुए। इसके अलावा भगत सिंह और उनके साथियों ने, व नेताजी सुभाष चंद्र बोस ने क्रांतिकारी मुहिम चलाई, और आखिरकार 15 अगस्त 1947 को देश आजाद हुआ। लेकिन, उल्लेखनीय बात है कि सन 1857 के विद्रोह के बाद किसी बादशाह, सुलतान, सम्राट या महाराजा की छत्र-छाया में देश के नेतृत्व का विचार ही नदारद हो गया। अब जो मुद्दे उठाए जाते थे वे आर्थिक समृद्धि, आधुनिक शिक्षा, स्वशासन, स्वराज, मूल अधिकार, कानूनी सुधार आदि से चलते-चलते सम्पूर्ण आजादी तक पहुंच गए। क्यों हमारे लिए एक निरंकुश, स्वेच्छा-चारी, दैवीय शक्तियों से युक्त सम्राट की आवश्यकता ही समाप्त हो गई? स्वशासन, स्वराज आदि की बात करते-करते, क्यों सन 1931 के कराची अधिवेशन में मौलिक अधिकार का प्रस्ताव पास हो गया? क्या विचारों में यह परिवर्तन किसी ऋषि मुनि या दिव्य शक्ति ने हमारे दिमागों में चमत्कारिक तरीके से उतार दिया था? या काल और परिस्थितियों के

अनुसार नए विचार जन्म लेते हैं और समयानुसार उनमें परिवर्तन आते रहते हैं।

आज, जब हम आजादी के मायनों पर बात कर रहे हैं तो यह बात विचारणीय है कि विचारधाराओं की उत्पत्ति, विकास और उनके प्रासंगिक या अप्रासंगिक होने की प्रक्रिया क्या है। तो, आइए आज हम आधुनिक विचारधाराओं की उत्पत्ति पर एक नज़र डालें।

सन 1789 में फ्रांस की क्रांति से एक नए युग का सूत्रपात हुआ। राजशाही को उखाड़ फेंकने के लिए कुछ नई उभरती हुई शक्तियों ने आजादी, समानता और भाईचारा के विचारों की आवश्यकता महसूस की और इन विचारों के लिए एक नई व्यवस्था की दरकार थी जो राजशाही की निरंकुशता से मेल नहीं खा सकती थी। जो पूँजीपति वर्ग का विकास है उसका आधार उदारवाद है। व्यक्ति के अधिकारों के नाम पर जो व्यवहारिक मांग होगी वो पूँजी के लिए जरूरी है, पूँजीपति के लिए जरूरी है। तो सम्पत्ति की आजादी, व्यापार की आजादी के लिए व्यक्ति के विचारों की आजादी भी आवश्यक थी और इसलिए राजा की निरंकुश सत्ता पर अंकुश लगाया जाना समय की जरूरत थी। आजादी, समानता और भ्रातृत्व के विचारों को स्थायी रूप देने के लिए एक नई व्यवस्था की मांग करना ही आधुनिकतावाद, प्रगतिशीलता और उदारवाद की उत्पत्ति का इतिहास है। जो शक्तियां पुरातन व्यवस्था की समर्थक थी उन्हें प्रतिक्रियावादी कहा जाने लगा। स्पष्ट है कि विज्ञान, नई दौलत, अर्थ-व्यवस्था, ज्ञान, नए सामाजिक समूहों की नई जरूरतों ने नए विचारों को जन्म दिया और निरंकुशता के विरोध में व्यक्ति के अधिकार, मनुष्य होने के अधिकार, और प्रजा की जगह नागरिक के रूप में अधिकारों की मांग ही आजादी के विचार का जन्मदाता थी।

संपत्ति की आजादी, व्यापार की आजादी और पूँजी के विकास की मूल शर्त के तौर पर विचारों की आजादी आवश्यक थी, और इसके लिए व्यक्ति की स्वतंत्रता, अभिव्यक्ति की आजादी और राज्य की सत्ता पर अंकुश लगाने वाली नई संवैधानिक व्यवस्था ही प्रगतिशील विचारधारा थी, लोकतंत्र और उदारवाद जिसकी विरासत है। इसी उदारवाद से आर्थिक समृद्धि के लिए पूँजी की व्यवस्था के पुनर्गठन की मांग ने समाजवादी और साम्यवादी विचारों को जन्म दिया, जिन्हें वामपंथी, और इनके विरोधियों को दक्षिणपंथी कहा जाने लगा।

जब राजा का राज और सामंत की जागीर की व्यवस्था ढलान पर आनी शुरू हो गई तो सम्राटों के फौज फरारों के सहारे विस्तार किए गए साम्राज्यों का भी पतन अवश्यभावी हो गया। ऐसे में भ्रातृत्व के विचार ने एक जैसी भाषा, एक जैसा पहनावा, एक जैसा आचरण आदि के आधार पर इटली, जर्मनी जैसे नए राष्ट्रों को जन्म दिया और इस प्रकार से राष्ट्रवाद के नाम से एक नई विचारधारा का उदय हुआ। इन नए राष्ट्र राज्यों ने पुराने साम्राज्यों का स्थान ले लिया।

इटली और जर्मनी के इलाके कभी ऑस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य के आधीन थे। ऑस्ट्रिया का साम्राज्य करीब 500 वर्षों तक यूरोप का सबसे बड़ा साम्राज्य था। यह जानना दिलचस्प है कि जब जर्मन यूनिफिकेशन हुआ, इटली का यूनिफिकेशन हुआ तो उसी ऑस्ट्रिया को बाहर कर दिया गया जहां का सम्राट कभी इनका सम्राट भी था।

भिन्न-भिन्न साम्राज्यों के विघटन के साथ भिन्न-भिन्न पहचान वाले इलाके अपने-आप को अलग-अलग राष्ट्रों के तौर पर परिभाषित करने लगे। तमाम राष्ट्र अलग-अलग परिस्थितियों में अलग-अलग आधार पर अलग-अलग देश कहलाए। मसलन युगोस्लाविया से क्रोएशिया अलग हुआ, चेकोस्लोवाकिया से कई देश बने। तमाम बाल्कन देश तुर्की साम्राज्य से अलग हुए। यानी भिन्न-भिन्न ऐतिहासिक प्रक्रिया में अलग-अलग

राष्ट्र राज्यों का निर्माण हुआ। महत्वपूर्ण बात यह है कि प्रत्येक राष्ट्र राज्य ने राजा-महाराजाओं की पुरातन व्यवस्था को समाप्त कर दिया। प्रजा की जगह नागरिक के विचार को स्थापित करने में उदारवाद और लोकतंत्र के अलावा राष्ट्र-राज्य ने भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। ऐसा भी हुआ कि सामंतीय ताकतों ने भी अपने आपको जिन्दा रखने के लिए पूँजीवाद से समझौता करके राष्ट्रवाद का उपयोग किया, जैसा कि इटली और जर्मनी में हुआ।

इसके विपरीत राष्ट्रवाद का साम्राज्यवाद विरोधी पक्ष भी है। अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और एशिया के अनेक देशों का आधुनिकता से जो सामना हुआ, वो गुलामी के माध्यम से हुआ। तो स्पष्ट है कि लोगों में अस्मिता की पहचान मज़बूत हुई। हमें हर रोज एक एहसास होने लगा कि किसी ने हम पर बाहर से आकर कब्जा कर लिया है, हम अलग हैं और ये अलग है, यानी सारे हिंदुस्तानी अलग हैं और अंग्रेज अलग हैं। गुलामी के एहसास और अनुभव ने हमें अपने बारे में, समाज के बारे में, दुनिया के बारे में सोचने को विवश किया और इससे एक राष्ट्रबोध उत्पन्न हुआ। और, यही राष्ट्रीय चेतना हमारा विशेष परिस्थितियों में उपजा राष्ट्रवाद है।

हमारे देश के परिप्रेक्ष्य में आधुनिकतावाद का मुख्य श्रेय औपनिवेशिक शक्तियों को जाता है, जो आधुनिक फौज, आधुनिक शस्त्रों, आधुनिक कार्यप्रणाली के बूते अपनी श्रेष्ठता और दबदबा कायम करने में कामयाब रही। उपनिवेशवाद की शिकार जनता भी आधुनिक शिक्षा और आधुनिक विचारों के सहारे ही उनका विरोध कर सकती थी। अब हमें बादशाह या सम्राट वाली नहीं बल्कि एक उदारवादी शासन व्यवस्था ही बेहतर लगने लगी। नतीजे के रूप में नरमपंथ से शुरू होकर मुखर रूप से स्वराज, लोकतंत्र, मूलभूत अधिकार, सम्पूर्ण आजादी और समाजवाद के सुर तेज होते गए। आखिरकार 15 अगस्त 1947 को हमें ब्रिटिश उपनिवेशीय शासन से मुक्ति मिली, और सन 1950 में हमें अपना एक नया संविधान मिला जिसकी प्रस्तावना में न्याय, स्वतंत्रता, समानता और बंधुता की भावना उल्लेखनीय है। प्रस्तावना के ये चार मूल बिंदु एक लंबी ऐतिहासिक यात्रा की उपज हैं, न कि दो चार व्यक्तियों की दिमागी सनक। भारतीय संविधान में समाहित मूल्य ही आजादी के विचार और भावना के संकेतक हैं। भारतीय राष्ट्रवाद किस प्रकार से इटली और जर्मनी के फासीवाद में रूपांतरित होने वाले राष्ट्रवाद से भिन्न है, इसका भेद भी हमारे संवैधानिक मूल्यों के आकलन से स्पष्ट हो जाता है।

हमारा राष्ट्रवाद अफ्रीका, लैटिन अमेरिका और एशिया के अनेक देशों की तरह गुलामी के एहसास से उपजे राष्ट्रबोध की उपज है। यह एक लम्बे राष्ट्रीय आंदोलन की विरासत है जिसमें सामाजिक श्रेणीकरण का विरोध और बहुलतावाद का सम्मान और एकता की भावना समाहित है। दक्षिणपंथी प्रतिक्रियावादी शक्तियां इटली और जर्मनी की तरह इतिहास के चक्के को पीछे धकेलने का प्रयास करती हैं, और कई बार लगता है कि उनको सफलता भी मिल रही है। लेकिन ऐतिहासिक नज़रिए से समझें तो प्रतिक्रियावाद की अपनी सीमाएं होती हैं, जो प्रगतिशीलता को लम्बे समय तक रोक नहीं सकती हैं। निष्कर्ष के तौर पर, प्रत्येक समाज अपनी-अपनी चुनौतियों से जूझता है, तरह-तरह के सक्रिय पहल करता है, और इस प्रक्रिया में नई विचारधाराओं की उत्पत्ति और विकास होती है, जो कभी सर्वोपरि रूप ले लेती है और कभी अधूरी भी लग सकती है। वर्तमान समय में लोकतंत्र ही व्यक्तिगत आजादी के बुनियादी अधिकार की गारंटी है। इसके लिए संवैधानिक संस्थाओं की स्वायत्तता को बचाए रखना और इसे प्रतिक्रियावाद, धनबल, संकीर्णवाद से बचाना एक बड़ी चुनौती है। एक नागरिक समाज का निर्माण ही आजादी का सही मायने है।

6 भारत जोड़ो यात्रा में यूथ फॉर स्वराज की भागीदारी: संजीव कुमार और पुष्कर पाल

18 दिसंबर को राजस्थान के दौसा में यूथ फॉर स्वराज का एक प्रतिनिधि-मंडल भारत जोड़ो यात्रा में शामिल हुआ। भारत जोड़ो यात्रा, जो 7 सितंबर को कन्याकुमारी से शुरू हुई थी, और 12 राज्यों से होते हुए 3500 किमी से अधिक की पदयात्रा करेगी, एक जन आंदोलन बन चुकी है। इस यात्रा में देश के प्रमुख सामाजिक कार्यकर्ता, बुद्धिजीवी, कलाकार, पत्रकार, जनसंगठन, जनांदोलन और आम नागरिक शामिल हुए और भारत को जोड़ने के लिए अपना समर्थन दिया।

यूथ फॉर स्वराज मानता है कि युवा अपनी विरासत के प्रति बेखबर नहीं हो सकता है। भारत के संविधान में रचा-बसा समता, न्याय, बंधुत्व और स्वतंत्रता का दर्शन हमारे लिए प्रकाश पुंज है। आजादी के बाद जल, जंगल, जमीन और किसान-मजदूर के आंदोलनों ने हमें सींचा है। भारत जोड़ो यात्रा ने जल, जंगल, पर्यावरण, मंगाई, शिक्षा, बेरोजगारी, महिला अधिकार, आर्थिक और सामाजिक असमानता, नफ़रत और राष्ट्र सुरक्षा जैसे मुद्दों पर देश की आवाज़ को बुलंद करने का काम किया है। यूथ फॉर स्वराज इन मुद्दों को जरूरी मानता है।

यूथ फॉर स्वराज की टीम एक सप्ताह तक भारत जोड़ो यात्रा के साथ रही और सामाजिक संगठनों के बैनर तले राजस्थान से दिल्ली पदयात्रा में चली। यात्रा के दौरान यूथ फॉर स्वराज ने बेरोजगारी के सवाल को प्रमुखता से उठाया, और बेरोजगारी के सवाल को लोगों तक पहुंचाने का काम किया।

यात्रा में चलते हुए यूथ फॉर स्वराज के सदस्यों द्वारा आम यात्रियों के बीच पर्चा वितरण किया गया। इस पर्चे का शीर्षक था, "बेरोजगारी: समस्या और समाधान"। पर्चे में चार महत्वपूर्ण मुद्दों पर बात की गई थी। पहली, बेरोजगारी से निराश युवाओं की आत्महत्याओं पर गंभीरता से विचार करने की जरूरत; दूसरी, अग्निपथ योजना और कैसे यह योजना देश की सुरक्षा के साथ खिलवाड़ कर रही है; तीसरी, परीक्षा में हो रही धाँधली; और चौथी महत्वपूर्ण बिंदु उच्च शिक्षा का बाजारीकरण था।

यूथ फॉर स्वराज के सदस्यों ने कॉलेजों में जाकर विद्यार्थियों की बीच भारत जोड़ो यात्रा और मौजूदा मुख्य सवालों के बारे में चर्चा की। भारत जोड़ो यात्रा के दौरान यूथ फॉर स्वराज की टीम ने अपने नारों और गीतों से लोगों को यात्रा में जुड़ने के लिए प्रेरित किया।

देश बचाने निकले, आओ हमारे साथ चलो!
संविधान बचाने निकले हैं, आओ हमारे साथ चलो!
रोजगार बचाने निकले हैं, आओ हमारे साथ चलो!
किसान का बेटा निकला है, आओ हमारे साथ चलो!
किसान की बेटी निकली है, आओ हमारे साथ चलो!
गांधी के गुजरात से, आओ हमारे साथ चलो!
समानता का नारा तेज हो, तेज हो तेज हो!
रोजगार की लड़ाई तेज हो, तेज हो तेज हो!



चित्र 2: भारत जोड़ो यात्रा में यूथ फॉर स्वराज की टीम

7 कोन थी सावित्री: मानसी भाष्कर

पितृसत्ता की बुराइयों को तोड़कर, वह हमारे लिए लड़ी।
जिस देश में शादी को शिक्षा से ज्यादा महत्व दिया जाता है,
उन्होंने हमें लड़कियों की शिक्षा का महत्व सिखाया।
वह भारत की पहली महिला शिक्षिका हैं। सावित्रीबाई फुले।

समाज की कुरीतियों के खिलाफ आपकी कलम ही एकमात्र घुरी है,
अपने अधिकारों के लिए लड़ने के लिए आपकी शिक्षा ही एकमात्र हथियार है।
एक शिक्षित दिमाग के पास लाखों लोगों की आवाज होती है,
यह रात को जलाने वाली आग है, रोशनी फैलाने वाली आग है।
उसे यह बताने के लिए कि वह आकाश से ऊपर है,
उनके दमन और चाल का आधार नहीं।

“शिक्षा महान तुल्यकारक है, और यह हमें हमारी गुफाओं से बाहर ले जाएगी” – सावित्रीबाई फुले।